

UP Board Solutions for Class 10 Sanskrit Chapter 4 क्षान्ति – सौख्यम् (पद्य – पीयूषम्)

परिचय

प्रस्तुत पाठ महर्षि व्यास द्वारा प्रणीत महाभारत से संगृहीत है। धृतराष्ट्र के सारथी संजय को दिव्य-दृष्टि व्यास जी ने ही दी थी जिसके द्वारा उसने महाभारत के युद्ध का आँखों देखा वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाया था। प्रस्तुत पाठ में महाभारत के युद्ध के अन्त में शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को दिये गये उपदेश का अंश है। इस अंश में क्षमा गुण का महत्त्व वर्णित है। क्षमा द्वारा ही मनुष्य को जीवन की सार्थकता प्राप्त होती है और यही उसका सर्वोपरि गुण भी है।

पाठ-सारांश

युद्धभूमि में घायलावस्था में शर-शय्या पर पड़े हुए, भीष्म पितामह युधिष्ठिर को नैतिकता का उपदेश देते हुए कहते हैं कि मानव-जन्म संसार के समस्त जन्मों में श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति इसे पाकर भी प्राणियों से द्वेष करता है, धर्म का अनादर करता है और वासनाओं में डूबा रहता है, वह अपने आपको धोखा देता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति दूसरों के दुःखों को समझकर उन्हें सान्त्वना देता है, दान इत्यादि कर्म करता हुआ सबसे मीठे वचन बोलता है, वह परलोक में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

क्षमाशील व्यक्ति गाली के प्रत्युत्तर में गाली नहीं देते, वरन् सहिष्णुता का परिचय देते हुए गाली देने वाले को भी क्षमा कर देते हैं। ऐसा करने पर गाली देने वाले का क्रोध स्वयं उसे ही जला डालता है। संसार के माया-मोह में फँसे व्यक्ति की चंचल बुद्धि उसे माया-मोह में और अधिक लिप्त करती है और वह व्यक्ति इहलोक एवं परलोक में दुःख प्राप्त करता है।

सहनशील एवं क्षमाशील व्यक्ति कभी अभिमान नहीं करते। क्रोध दिलाये जाने पर व गाली दिये जाने पर भी मधुर और प्रिय वचन ही कहते हैं।

दुःख से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यह है कि व्यक्ति दुःख की चिन्ता ही न करे; क्योंकि चिन्ता करने पर दुःख घटता नहीं, वरन् बढ़ जाता है। संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान् है। संचय क्षय के द्वारा, उँचाई (उन्नति) पतन के द्वारा, संयोग वियोग के द्वारा और जीवन मृत्यु के द्वारा सभी नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रियों को वश में रखना, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्य बोलना, लज्जा, हिंसा न करना, व्यसनरहित होना और कार्य में कुशल होना ही सुख के साधन हैं। क्रोध पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति समस्त विपत्तियों पर सरलता से विजय प्राप्त करते हैं। ऐसे अक्रोधी व्यक्ति क्रोधी को भी शान्त करने में समर्थ होते हैं। क्षमाशील एवं देहाभिमान से रहित व्यक्ति को संसार की किसी भी वस्तु से डर नहीं रहता।

पद्यांशों की ससन्दर्भ हिन्दी व्याख्या

(1)

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुषं द्विषते नरः।

धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वञ्चते ॥

शब्दार्थ यः = जो। दुर्लभतरं = कठिनाई से प्राप्त होने वाला प्राप्य = प्राप्त करके। मानुषम् = मनुष्य जन्म को। द्विषते = द्वेष करता है। धर्मावमन्ता = धर्म का अनादर करने वाला। कामात्मा = वासनाओं में आसक्त रहने वाला। खलु = निश्चय ही। वञ्चते = अपने को धोखा देता है।

सन्दर्भ प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक के 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' के 'क्षान्ति-सौख्यम्' शीर्षक पाठ से उद्धृत है।

[संकेत इस पाठ के शेष सभी श्लोकों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।]

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं कि इस संसार में मनुष्य जन्म पाकर व्यक्ति को धर्म का निरादर नहीं करना चाहिए।

अन्वय यः नरः दुर्लभतरं मानुषं (जन्म) प्राप्य द्विषते, धर्मावमन्ता कामात्मा (च) भवेत्, सः खलु (आत्मनः) वञ्चते।।

व्याख्या जो मनुष्य अन्य जन्मों से अधिक दुर्लभ मनुष्य के जन्म को पाकर प्राणियों से द्वेष करता है, धर्म का अनादर करने वाला और वासनाओं में आसक्ति रखने वाला होता है, वह निश्चय ही अपने आप को धोखा देता है।

(2)

सान्त्वेनानप्रदानेन प्रियवादेन चाप्युत।

समदुःखसुखो भूत्वा स परत्र महीयते ॥ [2013, 14]

शब्दार्थ सान्त्वेन = सान्त्वना के द्वारा। अन्नप्रदानेन = अन्न (भोजन) देकर। प्रियवादेन = प्रिय वचन बोलकर। समदुःखसुखःभूत्वा = दुःख और सुख में समान भाव रखने वाला होकर। परत्र = परलोक में। महीयते = प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में भीष्म पितामह इहलोक और परलोक में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के साधनों के विषय में बता रहे हैं।

अन्वय सः सान्त्वेन अन्न प्रदानेन उत प्रियवादेन च अपि समदुःखसुखः भूत्वा परत्र महीयते।

व्याख्या वृह मनुष्य सान्त्वना (तसल्ली बँधाने वाले शब्दों) से, अन्न (भोजन) के दान से अथवा प्रिय वचन के बोलने से भी सुख और दुःख को समान समझने वाला होकर परलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति सांसारिक प्राणियों के कष्ट दूर करके स्वयं समभाव में स्थित हो जाता है, परलोक में भी सम्मान मिलता है।

उसे

(3)

आक्रुश्यमानो नाक्रुश्येन्मन्युरेन तितिक्षतः।

आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं च तितिक्षतः ॥

शब्दार्थ आक्रुश्यमानः = गाली दिया (अपशब्द कहा) जाता हुआ। न आक्रुश्येत् = गाली नहीं देनी चाहिए। मन्युः = दबा हुआ क्रोध। एनं = इस। तितिक्षतः = क्षमाशील व्यक्ति का। आक्रोष्टारम् = गाली देने वाले को। निर्दहति = जला देता है। सुकृतम् = पुण्य च = और।।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में भीष्म पितामह द्वारा क्षमाशील व्यक्ति के पुण्य-संचय का उल्लेख किया गया है।

अन्वय आक्रुश्यमानः न आक्रुश्येत्। तितिक्षतः मन्युः एनम् आक्रोष्टारं निर्दहति, तितिक्षतः च सुकृतम् (भवति)।

व्याख्या दूसरों के द्वारा गाली दिये जाने पर भी व्यक्ति को बदले में गाली नहीं देनी चाहिए। (गाली को) क्षमा (सहन) केर देने वाले व्यक्ति को क्रोध उस गाली देने वाले को पूर्णतया जला देता है और क्षमा करने वाले का पुण्य होता है। तात्पर्य यह है कि गाली देने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है और गाली सह लेने वाले को पुण्य होता है।

(4)

सक्तस्य बुद्धिश्चलति मोहजालविवर्धिनी।

मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र चाश्रुते ॥

शब्दार्थ सक्तस्य = संसार के प्रति आसक्ति रखने वाले का। बुद्धिः = बुद्धि। चलति = चलायमान रहती है, अस्थिर रहती है, भटकती रहती है। मोहजालविवर्धिनी = मोहजाल को बढ़ाने वाली। मोहजालावृतः = मोहरूपी जाल में फँसकर यह व्यक्ति। इह = इस लोक में। अमुत्र = परलोक में। अश्रुते = प्राप्त करता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में भीष्म पितामह द्वारा सुख-दुःख प्राप्ति के कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

अन्वय सक्तस्य मोहजालविवर्धिनी बुद्धिः चलति। मोहजालावृतः (सह) इह च अमुत्र च दुःखम् अश्रुते।

व्याख्या संसार से अत्यधिक लगाव (आसक्ति) रखने वाले व्यक्ति की मोहजाल को बढ़ाने वाली बुद्धि गतिशील रहती है, अर्थात् भटकती रहती है। मोहजाल में फँसा हुआ व्यक्ति इसे लोक में और परलोक में भी दुःख प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि सुख चाहने वाले व्यक्ति को संसार में आसक्त नहीं होना चाहिए।

(5)

अतिवादस्तितिक्षेत नाभिमन्येत कञ्चन।

क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥

शब्दार्थ अतिवादान् = कटु वचनों को। तितिक्षेत = सहन करना चाहिए। न अभिमन्येत = अभिमान प्रकट नहीं करना चाहिए। कञ्चन = किसी के प्रति क्रोध्यमानः = क्रोध का शिकार होने पर भी अर्थात् किसी के द्वारा क्रोध दिलाये जाने पर भी। प्रियं ब्रूयात् = प्रिय बोलना चाहिए। आक्रुष्टः = गाली दिये जाने पर कुशलं वदेत् = हितकर वचन बोलना चाहिए।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में सज्जनों के स्वभाव का उल्लेख किया गया है।

अन्वय अतिवादान् तितिक्षेत। कञ्चन न अभिमन्येत। क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयात्। आक्रुष्टः कुशलं वदेत्।।

व्याख्या सज्जनों को कटु वचनों को सहन करना चाहिए। किसी के प्रति अभिमान प्रकट नहीं करना चाहिए; अर्थात् स्वयं को बड़ा और अन्य को छोटा मानकर व्यवहार नहीं करना चाहिए। क्रोध दिलाये जाने पर भी प्रिय वचन बोलना चाहिए; अर्थात् दूसरों के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी मधुर वचन ही बोलना चाहिए। गाली दिये जाने पर; अर्थात् अपशब्द कहे जाने पर भी कुशल वचन बोलना चाहिए।

(6)

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्।

चिन्त्यमानं हि नव्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ [2007]

शब्दार्थ भैषज्यम् = औषध। एतत् = यह दुःखस्य = दुःख की। यत् = कि। एतत् = इसके बारे में। न अनुचिन्तयेत् = चिन्तन नहीं करना चाहिए। चिन्त्यमानम् = सोचा जाता हुआ। हि = क्योंकि नव्येति = कम नहीं होता है, घटता नहीं है। भूयश्चापि (भूयः + च + अपि) = वरन् और भी (अधिक)। प्रवर्धते = बढ़ता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में दुःख-निवारण के उपाय के विषय में बताया गया है।

अन्वय एतद् दुःखस्य भैषज्यम् (अस्ति) यत् एतत् न अनुचिन्तयेत् हि चिन्त्यमानम् (दुःखम्) न व्येति, भूयः च अपि प्रवर्धते।।

व्याख्या यह दुःख की औषध है कि इसकी (इसके बारे में) चिन्ता (सोचना) नहीं करनी चाहिए: क्योंकि चिन्तन किया गया दुःख कम नहीं होता है, अपितु और भी बढ़ जाता है। तात्पर्य यह है कि दुःख को भूलने का प्रयास करना चाहिए।

(7)

सर्वे क्षयान्ताः निचयाः पतनान्ताः समुच्छयाः।

संयोगाः विप्रयोगान्ताः मरणान्तं हि जीवितम् ॥ [2009, 10]

शब्दार्थ सर्वे = सभी। क्षयान्ताः = क्षय में अन्त वाले; अर्थात् अन्त में नष्ट हो जाने वाले। निचयाः = संग्रह। पतनान्ताः = पतन में अन्त वाले; अर्थात् अन्त में नीचे गिरने वाले। समुच्छयाः = ऊँचाइयाँ, उत्थान, उन्नति। संयोगाः = संयोग, मिलन। विप्रयोगान्ताः = वियोग में अन्त वाले; अर्थात् अन्त में बिछुड़ जाने वाले मरणान्तम् = मरण में अन्त वाला; अर्थात् अन्त में मर जाने वाला हि = निश्चय ही। जीवितम् = जीवित, जन्म।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में जीवन में सुख-दुःख से सम्बन्धित स्थितियों के साथ-साथ रहने तथा अन्ततः सभी स्थितियों का पर्यवसान होने की बात कही गयी है।

अन्वय सर्वे निचयाः क्षयान्ताः (सन्ति); (सर्वे) समुच्छयाः पतनान्ताः (सन्ति)। (सर्वे) संयोगाः विप्रयोगान्ताः (सन्ति)। (सर्वेषां) जीवितं हि मरणान्तम् (अस्ति)।

व्याख्या सभी संग्रह क्षय में अन्त वाले हैं; अर्थात् नष्ट हो जाने वाले हैं। सभी ऊँचाइयाँ पतन में अन्त वाली हैं; अर्थात् सभी पतन को प्राप्त हो जाने वाले हैं। सभी संयोग वियोग में अन्त वाले हैं; अर्थात् सभी मिलने वाले अन्त में बिछुड़ जाने वाले हैं। सभी जीवन निश्चित ही मृत्यु में अन्त वाले हैं; अर्थात् सभी जीवधारी अन्ततः मृत्यु को प्राप्त हो जाएँगे। तात्पर्य यह है कि जब सब कुछ एक दिन समाप्त हो ही जाने वाला है तब इसके लिए व्यक्ति को नाना प्रकार के कुकर्म नहीं करने चाहिए।

(8)

दमः क्षमा धृतिस्तेजः सन्तोषः सत्यवादिता ।।

हीरहिंसाऽव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः ॥ [2008, 13]

शब्दार्थ दमः = इन्द्रियों को वश में रखना। धृतिः = धैर्य, धीरता। सत्यवादिता = सत्य बोलना। हीः = लज्जा। अव्यसनिता = दुर्व्यसनों से रहित होना। दाक्ष्यम् = कार्य की कुशलता। सुखावहाः = सुख देने वाले।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में मानव-जीवन को सुखी बनाने वाले गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

अन्वय दमः, क्षमा, धृतिः, तेजः, सन्तोषः, सत्यवादिता, ह्रीः, अहिंसा, अव्यसनिता दाक्ष्यम् च-इति (दश गुणाः) सुखावहाः (सन्ति)।

व्याख्या मन और इन्द्रियों को वश में रखना, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्य बोलना, लज्जा, हिंसा न करना, व्यसनों से रहित होना और कार्य की कुशलता-ये दस गुण सुख देने वाले हैं। तात्पर्य यह है कि इन गुणों से युक्त व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता।

(9)

**ये क्रोधं सन्नियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च।
न कुप्यन्ति च भूतानां दुर्गाण्यति तरन्ति ते ॥**

शब्दार्थ ये = जो लोग। क्रोधं = क्रोध को। सन्नियच्छन्ति = नियन्त्रित रखते हैं। क्रुद्धान् = क्रोधित हुए व्यक्तियों को। संशमयन्ति = शान्त करते हैं। न कुप्यन्ति = क्रोध नहीं करते हैं। च = और। भूतानि = प्राणियों पर। ते = वे। दुर्गाणि = दुर्गम स्थानों को, विषम परिस्थितियों को। अति तरन्ति = पार कर जाते हैं।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में क्रोध पर नियन्त्रण करने का सन्देश दिया गया है।

अन्वय ये क्रोधं सन्नियच्छन्ति, क्रुद्धान् च संशमयन्ति, भूतानां च न कुप्यन्ति, ते दुर्गाणि अतितरन्ति।

व्याख्या जो लोग क्रोध को वश में रखते हैं तथा क्रोधित हुआओं को शान्त करते हैं और प्राणियों पर क्रोध नहीं करते हैं, वे अत्यधिक कठिनाइयों; अर्थात् विषम परिस्थितियों को पार कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि क्रोध सबसे बड़ा शत्रु होता है। उसे अपने से दूर रखना चाहिए।

(10)

**अभयं यस्य भूतेभ्यो भूतानामभयं यतः।
तस्य देहाविमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ [2006,09,14]**

शब्दार्थ अभयं = भय नहीं है। यस्य = जिसको भूतेभ्यः = प्राणियों से। भूतानाम् = प्राणियों को। यतः = जिससे। तस्य = उसका। देहाद् विमुक्तस्य = शरीर से मुक्ति प्राप्त हुए; अर्थात् देह अभिमान से रहित। भयं नास्ति = भय नहीं रहता है। कुतश्चन = कहीं से भी।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में भयमुक्ति का उपाय बताया गया है।

अन्वय यस्य भूतेभ्यः अभयम् (अस्ति), यतः भूतानाम् अभयम् (अस्ति)। देहाद् विमुक्तस्य तस्य कुतश्चन भयं न अस्ति।।

व्याख्या जिसको प्राणियों से भय नहीं है, जिससे प्राणियों को भय नहीं है। शरीर से मुक्ति प्राप्त किये हुए; अर्थात् देह-अभिमान से रहित हुए व्यक्ति को कहीं से या किसी से भय नहीं है।

सूक्तिपरक वाक्यांशों की व्याख्या

(1) यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुषं द्विषते नरः। [2009]

सन्दर्भ प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' के 'क्षान्ति-सौख्यम्' पाठ से अवतरित है।

[संकेत इस पाठ की शेष सभी सूक्तियों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में मनुष्य-जन्म को दुर्लभ बताने के साथ-साथ द्वेषरहित होना भी आवश्यक बताया गया है। अर्थ जो मनुष्य दुर्लभतर मनुष्य जीवन को प्राप्त करके द्वेष करता है (वह स्वयं को धोखा देता है)।

व्याख्या भारतीय वाङ्मय के अनुसार समस्त जीवधारियों की चौरासी लाख (84,00,000) योनियाँ अर्थात् जन्म माने गये हैं, जिनके अण्डज, स्वेदज, उभिज और जरायुज चार विभाग हैं। इन समस्त योनियों अर्थात् जन्मों में मनुष्य-जन्म को दुर्लभतर की श्रेणी में रखा गया है। इस दुर्लभ श्रेणी के व्यक्ति को द्वेष से । रहित होना चाहिए। द्वेष को व्यक्ति का अति सामान्य दुर्गुण माना जाता है। इसीलिए अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त करने वाला लोगों से द्वेष करता रहे और अपने कर्तव्यों के प्रति ध्यान न रखे तो ऐसा जीवन प्राप्त करना व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति स्वयं को ही धोखा देता है।

(2) धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वञ्चते। [2006]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में कामनाओं में आसक्त रहने वाले और धर्म की निन्दा करने वाले व्यक्ति की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ धर्म का अनादर करने वाला और वासनाओं में आसक्त रहने वाला स्वयं को ही धोखा देता है।

व्याख्या जो व्यक्ति विषय-वासनाओं अथवा कामनाओं में आसक्त रहकर धर्म की उपेक्षा करता है, उसका अनादर करता है, ऐसा करके वह किसी दूसरे की हानि नहीं करता वरन् स्वयं अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है, अर्थात् अपनी ही हानि करता है। इसका कारण यह है कि धर्म व्यक्ति में कर्तव्य-अकर्तव्य तथा औचित्य-अनौचित्य का विवेक उत्पन्न करता है। इससे व्यक्ति पापकर्मों से विरत रहता है और सदैव पुण्य कर्म करने का प्रयास करता है। इसके परिणामस्वरूप वह उच्च से उच्चतर और अन्ततः परमपद का अधिकारी बनता है। इसके विपरीत धर्म का अनादर करने वाला और विषयी व्यक्ति केवल पापकर्मों का संचय करता है तथा जीवन-मरण के चक्र में फँसा ही रहता है, उससे कभी निकल नहीं पाता। अतः ऐसा करने वाला व्यक्ति स्वयं को ही धोखा देता है, किसी अन्य को नहीं।

(3) मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र चाश्रुते।।

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सुख-दुःख प्राप्ति के कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ मोह के जाल में फँसा हुआ प्राणी दोनों ही लोकों में दुःख भोगता है।

व्याख्या माया-मोह के जाल में फँसे हुए व्यक्ति को प्रत्येक क्षण और अधिक धन-सम्पत्ति अर्जित करने की चाह बनी रहती है और वह उसकी प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित उपायों का प्रयोग करता है। इस प्रकार और अधिक धन प्राप्त करने की चाह में वह अर्जित साधनों और धन-सम्पत्ति का उपयोग करते हुए भी

उनसे कोई सुख प्राप्त नहीं कर पाता। परलोक में सुख प्राप्त करने के लिए भी वह कोई सद्कर्म नहीं कर पाता; क्योंकि उसके मन से माया-मोह का जाल नहीं हट पाता। इस प्रकार से माया-मोह में हँसा व्यक्ति ने तो इस लोक में सुख प्राप्त कर सकता है और न परलोक में।

(4) भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्।।

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में दुःख-निवारण का उपाय बताया गया है।

अर्थ यह दुःख की औषध है कि उसका चिन्तन नहीं करना चाहिए।

व्याख्या सुख और दुःख व्यक्ति के अपने हाथ में नहीं होते और न ही इनको किसी प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता है। दुःख की जितनी अधिक चिन्ता की जाती है, वह बढ़ता ही जाता है। उसे किसी औषध के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। औषध भी तभी कार्य करती है, जब व्यक्ति मानसिक रूप से दुःख से लड़ने के लिए उद्यत हो। इसलिए यदि व्यक्ति अपने दुःख को दूर करना चाहता है तो उसे दुःख के विषय में सोचना छोड़ देना चाहिए। जब वह दुःख के विषय में न सोचकर सुख के विषय में सोचेगा और यह अनुभव करेगा कि वह अन्य बहुत-से लोगों से सुखी है तो निश्चित रूप से उसके मन को सुख-शान्ति मिलेगी। वास्तव में सुख-दुःख कुछ भी नहीं हैं, ये तो केवल मन के विकल्प हैं। व्यक्ति जैसा सोचेगा, उसे वैसा ही अनुभव होगा। यदि वह अपने मन में स्वयं को सुखी मानेगा तो उसे सुख का अनुभव होगा और दुःखी मानेगा तो उसे दुःख का अनुभव होगा।

(5) सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्याः। [2009, 11, 12, 15]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में संसार की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ सभी संग्रह नाशवान् और सभी ऊँचाइयाँ पतन में अन्त वाली हैं।

व्याख्या इस संसार में जितने भी संग्रह हैं, वे सब एक-न-एक दिन समाप्त अवश्य होंगे, अर्थात् उनका नाश अवश्यम्भावी है। जितनी भी ऊँची-ऊँची वस्तुएँ और भवन आदि हमें दिखाई देते हैं, एक दिन वे सब भी धराशायी हो जाएँगे। हमने उन्नतिरूपी जितनी भी ऊँचाइयाँ प्राप्त की हैं, एक दिन उनका पतन भी अवश्य होगा। आशय यह है कि यहाँ कुछ भी शाश्वत नहीं है, वरन् क्षणभंगुर है। अतः व्यक्ति को इस संसार में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

(6)

संयोगाः विप्रयोगान्ताः मरणान्तं हि जीवितम्। [2006, 08, 09, 11]

मरणान्तं हि जीवितम्।।

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में मृत्यु की शाश्वतता पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ मिलन की अवधि वियोग और जीवन की अवधि मृत्यु है।

व्याख्या यह संसार दुःखप्रधान है। इसमें संयोग के क्षण अत्यल्प हैं, जब कि वियोग चिरकालीन है। प्रत्येक सुख का अन्तः दुःख है, किन्तु प्रत्येक दुःख का अन्त सुख नहीं है। जो आज है, वह कल नहीं रहेगा और जो कल रहेगा वह आगे नहीं रह जाएगा। जो मिला है, वह बिछुड़ता भी अवश्य है और जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है; अर्थात् जीवन की अन्तिम परिणति मृत्यु है; अतः व्यक्ति को इस संसार में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

श्लोक का संस्कृत-अर्थ

(1) यो दुर्लभतरं

..... खलु वञ्चते

॥ (श्लोक 1) [2013]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके महापुरुषः भीष्मः युधिष्ठिरम् उपदिशति-यः नरः दुर्लभतरं मनुष्य-जन्म प्राप्य जीवेभ्यः द्वेषं करोति, सः धर्मस्य अवमन्ता कामात्मा च भवेत्, सः खलु स्व-आत्मानं वञ्चते।

(2) आक्रुश्यमानो च तितिक्षतः ॥ (श्लोक 3)

संस्कृतार्थः महात्मा भीष्मः कथयति—यः पुरुषः आक्रुष्यमानः अपि क्रोधं न कुर्वति क्रोधमपि सहते, आक्रुष्टारम् अपि क्षमा करोति; सः क्षमाशीलः पुरुषः पुण्यशाली भवति।

(3) भैषज्यमेतद् दुःखस्य भूयश्चापि प्रवर्धते ॥

(श्लोक 6) (2009)

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके भीष्मपितामहः युधिष्ठिरम् उपदिशः—अस्मिन् संसारे दुःखस्य निवृत्तेः एकमात्र उपायः अस्ति यत् तस्य चिन्तनं न कुर्यात्। एतत् दुःखस्य औषधम् अस्ति। यतः चिन्त्यमानं दुःखम् अल्पतां न प्राप्नोति, अपितु अत्यधिकं वृद्धिं प्राप्नोति।

(4) सर्वे क्षयान्ताः हि जीवितम् ॥ (श्लोक 7)

[201]

संस्कृतार्थः महर्षिः वेदव्यासः कथयति यत् संसारे ये सङ्ग्रहाः सन्ति, अन्ते तेषां विनाशः भवति, ये चे उत्तुङ्गाः सन्ति, अन्ते तेषां पतनम् अवश्यं भवति। संयोगाः अन्ते वियोगरूपे परिणताः भवन्ति, एवमेव जीवितम् अपि अन्ते मृत्युं प्राप्नोति।।

(5) दमः क्षमा

..... चेति

सुखावहाः ॥ (श्लोक 8) [2008, 15]

संस्कृतार्थः महात्मा भीष्मः कथयति यत् जीवने इन्द्रियाणां नियन्त्रणः, क्षमा, धैर्यं, तेजः, सन्तोषः सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनरहिता, कार्यदक्षता च इति सुखसाधनाः सन्ति।

(6) ये क्रोधं “तरन्ति ते ॥ (श्लोक 9)

[2007, 10, 15]

संस्कृतार्थः महात्मा भीष्मः कथयति यत् ये जनाः क्रोधं सन्नियच्छन्ति, क्रुद्धान् च संशमयन्ति, जीवानां च क्रोधं न कुर्वन्ति, ते जनाः दुर्गाणि अतितरन्ति। क्रोधः मनुष्यस्य महद्रिपुः अस्ति; अतः मनुष्यः क्रोधं न कुर्यात् अत्र इति भावः।।

(7) अभयं यस्य कुतश्चन ॥ (श्लोक 10)

[2006, 08, 12]

संस्कृतार्थः महात्मा भीष्मः कथयति यत् यस्य भूतेभ्यः अभयं भवति, यतः भूतानाम् अभयं प्राप्नोति, तस्मात् देहात् विमुक्तस्य पुरुषस्य कुतश्चन भयं न भवति।